Chapter-6

षष्ठ अध्याय

कुमाऊँ की लोक कथाओं में संस्कृतिक तत्व

षष्ठ अध्याय

कुमाऊँ की लोककथाओं में सांस्कृतिक तत्व

जैसा कि सर्ववादित पहले बता चुके हैं कि लोकसाहित्य क्या है? हर भाषा का अपना साहित्य होता है उसी प्रकार से कुमाऊँ का भी अपना लोक साहित्य है जिसके आधार पर कुमाऊँनी लोक साहित्य के दो भेद बताए हैं –

(१) श्रव्य (२) दृश्य

कुमाऊँ के लोककथाओं की परिभाषा :

[१](कहीं कहीं पर तो दोनों विद्याएँ कम ज्यादा मात्रा में साथ साथ पाई जाती है। जैसे झोड़ा, चाँचरी, छवेली आदि लोक की अधिकांश साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रायः गेय होती है। अतः परिनिष्ठित साहित्य की ही भाँति गेयता अथवा लय को आधार मानकर कुमाऊँनी लोक – साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) गद्य (२) पद्य और (३) चम्पू

कुमाऊँनी लोकसाहित्य में गद्य के अन्तर्गत लोककथाएँ, मुहावरे, लोक प्रचलित मंत्र – साहित्य और कुछ कहावते आदि आती हैं।)[१]

[२](कथा या 'कहानी' शब्द संस्कृत 'कथ' (हि. कह) से बना है जिसका तात्पर्य है कहना। कथ में स्त्रीलिंग टाप् (आ) प्रत्यय के योग से 'कथा' शब्द निर्मित हुआ है। कथा से तात्पर्य है – किसी चरित्र, घटना, समस्या या उसके किसी पहलू का रोचक और मनोरंजक वर्णन।)[२]

लोक की भाषा में कही जानेवाली कहानी (मौखिक) रुप में वह लोककथा है। उदाहरण : लोककथा

(ई. एस ओकले के मतानुसार – ये कथाएँ अपनी उन्मुक्त कल्पना, ठेठ देहातीवन और पुरानी दुनियाँ के अन्ध विश्वासों के अवशेष रुप में केल्टिक और अंग्रेजी लोककथाओं की टक्कर की है।)

कुमाऊँनी लोक साहित्य जगत में डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय ने लोककथाओं को दस भागों, डॉ. कृष्णानन्द जोशी ने तीन भागों तथा डॉ. पुष्पलता भट्ट ने डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय के आधार पर ही इसे किंचित व्यापक रुप में प्रस्तुत किया है।

सामान्यतः हम जानते हैं कि भारत में लोककथाओं की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। यदि सभी जगह की लोककथाएँ एकत्र की जाए तो बहुत बड़े – बड़े ग्रंथ बन सकते हैं, परन्तु सुरक्षा के अभाव में कुछ कथाएँ लुप्त हो गयी है।

[3](इतनी बड़ी संस्कृति को पारिभाषित करना सरल कार्य नहीं है। हर एक व्यक्ति के परिभाषित करने का अलग ढंग होता है। किसी भी वस्तु को हम चार पंक्तियों में लिख तो देते हैं, परन्तु उसका अर्थ सीमित नहीं होता है। उसी प्रकार से संस्कृति को चार पंक्तियों में बताना या लिखना कोई सरल काम नहीं है, परन्तु हमें नियम का पालन करते हुए उसे अपने मतानुसार पंक्तियों में समेटना पड़ता है और उसी प्रकार से कुछ विद्वानों ने कुछ शब्दों में परिभाषा लिखी है जो इस प्रकार से है।

(१) **वसंत निरगुणे :** मनुष्य में जो गुण होते हैं उनको वह अधिक समय तक संचय करके रखता है। गुण चाहे किसी भी क्षेत्र में हो, वह धीरे – धीरे आगे की पीढ़ी में भी जाते रहते हैं वही चक्र धीरे – धीरे जटिल रुप ले लेता है। तब संस्कृति कहलाती है।

(२) संस्कृति हमें मनुष्य की योग्यता के बारे में परिचित कराती है कि जैसे मनुष्य में योग्यता होगी वह उसी प्रकार का कार्य करेगा।

प्राचीन काल से मनुष्य जिस भी अवस्था में जीता आया है उससे वह धीरे – धीरे आगे ही बढ़ता आया है। मनुष्य ने अच्छी बातें संजोकर बुरी आदतों को छोड़ने का प्रयास किया। मनुष्य को जीने के लिए जो भी आवश्यक लगा उसका उसने अविष्कार किया और अच्छी आदतों को बढ़ावा दिया। उसे अपनाया तथा बहुत समय तक उसका पालन करता गया, वही जो विकास निरंतर होता रहा और हो रहा है वह संस्कृति है। दूसरे धर्म में जो संस्कृति थी उसको भी अपने तरीके से अपनाया। उन सब संस्कृतियों को मिलाकर भी संस्कृति का विकास हुआ।

यदि देखा जाय तो आज हम पूर्व की संस्कृति को अपनाते जा रहे हैं, तथा अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। परन्तु जो शांति तथा सुख हमें अपनी संस्कृति में मिलती है वह किसी और संस्कृति में नहीं मिल सकती है।)[3]

कुमाऊँनी कथाओं में लोक संस्कृति :

जैसा कि पिछले पृष्ठों पर स्पष्ट किया जा चुका है कि लोक संस्कृति एक संपल विशेष की सांस्कृतिक पद्ययान होती है जो उसे परंपरा तथा विरासत में प्राप्त होती है। कुमाऊँनी लोक संस्कृति वहाँ के सम्पूर्ण सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और भौगोलिक स्थितियों से परिव्यापत रहती है। साहित्य में लोक संस्कृति का समावेश नागर साहित्य में भी होता है और लोक साहित्य में भी। लोक साहित्य जो कि लोगों के लिए गठित क्षेत्र है, उसमें उस संपत विशेष की सम्पूर्ण विशिष्टताओं व वृतियों का संकलन देखा जा सकता है। कुमाऊँनी प्रदेश पहाड़ों की सांस्कृतिक सम्पदा से परिपूर्ण है। अतः वहाँ के साहित्य में भी पहाड़ी संस्कृति के सम्पूर्ण वृत को देखा व समझा जा सकता है।

जहाँ तक कथा – साहित्य का संबंध है उसमें यथार्थ और कल्पना का समावेश होता है। उसका काल्पनिक पक्ष भी यथार्थ के परिवेश से संतुलित होने के कारण लोकभोग्य तो रहता ही है व उसका यह लोकभोग्य रुप उस प्रदेश की परम्पराओं व सांस्कृतिक अवधारणाओं को लेकर ही अग्रसर होता है। पिछले पृष्ठों पर हमने कुमाऊँनी लोक कथाओं के संदर्भ में परिचयात्मक विवरण दिया है। यहाँ हम उन कथाओं में कुमाऊँनी सांस्कृतिक के परिव्याप्त प्रभाव को विशलेषित करेंगे।

:– कथा में व्याप्त सांस्कृतिक मूल्यों का यथार्थ वर्णन।

:– पात्रों की सांस्कृतिक मनस्थिति एवं उनके आचरण।

:– कथा में व्याप्त परंपरिता भौगौलिक वातावरण।

:– भाषा एवं संवाद के द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक दृश्यों का आंकलन।

:– कुमाऊँनी संस्कृति की मौलिक विशिष्टताएँ एवं कथाओं में उनका सन्निवेष।

:– कुमाऊँनी लोककथाओं की प्रमुख रचनाएँ तथा रचनाकारों का परिचयात्मक विवरण तथा उनकी विशिष्टताएँ।

:– अन्य सांस्कृति परिवेश से कुमाऊँनी लोक संस्कृति का वैशिष्टय।

संस्कृति का उदय होना या अस्त होना यह लोगों के द्वारा परिमार्जित किया गया वह शस्त्र है, जिससे कि परम्परा और प्रयोग मानो एक दूसरे के साथ एक नयी विद्या को जन्म देने की कोशिश करते है। कई बार ऐसा देखने को मिला है कि संस्कृति और साहित्य प्राचीन होने के साथ – साथ समय – समय पर कितनी ही जातियाँ को अपने अंदर समाहित करते हुए संस्कृति की नयी धारा एक विशाल वट (बरगद) वृक्ष की भाँति अपनी शाखाओं के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बहुत ही

मजबूती के साथ धर्म, भाषा, सामाजिक परंपरा आदि के साथ स्वंय को साहित्य और संस्कृति के साथ जुड़े रहने के लिए सभ्यता का संस्कृति का और सामाजिक परिवेश का विशलेषण करने के पश्चात् ही संस्कृति और सभ्यता का भाव परिलक्षित होता है।

लोकसंस्कृति, लोककथाएँ ये सभी सिर्फ मानवीय उन्मूलन को ही व्यक्त नहीं करती बल्कि सामान्य वर्ग को भी अपने अन्दर समाहित करने का प्रयास करती है।

सामाजिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो इसे दो वर्गों में बाँट सकते हैं। सामान्य वर्ग, अभिजात वर्ग।

उसी तथ्य के अनुसार कुमाऊँ की संस्कृति को भी दो वर्गों में बाँटा गया है। (१) लोक संस्कृति (२) अभिजात संस्कृति।

चूँकि यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि सम्पूर्ण कुमाऊँ में लोकशक्ति का ही वर्चस्व है।

यहाँ पर विभिन्न मध्यमवर्गीय लोगों ने लोककथाओं के माध्यम से अपनी संस्कृति को जीवित रखा है। जैसे कि दास, ढोलो, ओढ, मिरासी, हुडकिया, भौजी, चम्प्या, टनचम्पथा इन्हें संस्कृति का वाहक माना गया है।

लोक कथा साहित्य का संस्कृति उसके आचार विचार, बोली, भाषा, धर्म, वित्य, रीति, रिवाज, परंपरा की अभिव्यक्ति है। लोक संस्कृति, लोकनृत्य, लोककथाओं, लोकभाषाओं, लोकगीतों, लोकोत्तियों, पहेलियाँ, काष्टकला, इत्यादि विभिन्न संस्कृति का क्षेत्रीय देवी – देवताओं, विशिष्ट जाति आदि धार्मिक सम्प्रदायों को अपने साथ – साथ रचने बसने के साथ संस्कृति को एक नयी भाषा के रुप में परिवर्तित करती है।

लोककथाओं की परंपरा का मूल स्रोत अगर देखा जाय तो कई विद्वानों ने अपने – अपने मत प्रस्तुत किये हैं।

[४](उसमें से डॉ. सत्येन्द्र ने धर्मगाथाओं में लोककथा का प्राचीन मूलरुप माना है। जैसा कि सर्वविदित है कि ऋग्वेद में भी हमें लोककथाओं का प्राचीन प्रारुप देखने को मिलता है।)[४] [५](वहीं दूसरी ओर डॉ. शंकरलाल यादव का अभिमत है कि लोककथा ऋग्वेद पूर्वकाल से चला आ रहा है, और उनका लिखित रुप ऋग्वेद में प्राप्त है।)[५]

इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि लोक कहानियों कि अपनी एक मौखिक परंपरा रही है।

इसी वजह से कहानी लेखन को एक नया मार्ग मिला है। या यूँ भी कह सकते है कि कहानी लेखन की परंपरा का उदय सबसे पहले भारत में ही हुआ है। मान्यता यह भी है कि इसकी पुष्टि पूर्णरुप से ऋग्वेद में भी देखने को मिलती है। लोक कथा, लोक साहित्य, लोक संस्कृति एक दूसरे के साथ इस तरह से जुड़े हुए हैं, जिसका विश्लेषण करते हुए [६](डॉ. बबुलकर ने लिखा है कि वेदों की एक – एक ऋचा सम्पूर्ण कथा है।)[६] हमारे वेदों में ब्राह्मण ग्रंथो में भी लोककथा पूरी तरह से रची बसी है।

[७](जैसे कि शतपथ ब्राह्मण की पुरुरवा एवं उर्वशी की कथा अन्य कथा, अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रगट कथा लोककथा परम्परा की प्राचीन कड़ी के रुप में स्वीकार की जा सकती है। उपनिषदों में भी लोककथा प्राप्त होती है। याज्ञवल्क – गार्की का कथोपकथन, सत्यकाम के संवाद में लोककथा का नया रुप हमारे सामने उद्घाटित हुआ है। अर्थात् इस काल की ये कथाएँ लौकिक धरातल पर उतर आयी थी। वेद

और ब्राह्मण ग्रन्थों में देवी – देवता पात्रों के रुप में प्रयुक्त हैं तो उपनिषदों में ऋषी, राजा – रानी पात्र बने है।)[७]

लोककथा वेदों मे कथा बीजरुप के समान है पुराण साहित्य में लोककथा, प्रचुर मात्रा में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई। पंचतंत्र, हितोपदेश, नीतिकथा के अन्तर्गत आते है। अतः हम तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि मनुष्य जन्म के साथ ही लोककथा का उदय होता है।

लोककथाओं में संस्कृति का उदय होता है और संस्कृति से नैतिक मूल्यों का उदय होता है। वही लोगों में कहानी कहने की परंपरा पुरानी है अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करना कथा के रुप में चाहे वह जीवन के दुःख – सुख से संबंधित हो या रीति – रिवाज आस्थाओं से संबंधित हो। आदिकाल के पृष्टभूमि की ओर देखें तो यह अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है, कि लोककथा का गठबंधन मनुष्य की चेतनाओं से भरा हुआ है। जिसमें कि मनुष्य के प्रेम, श्रृंगार, वीरभाव, वैरभाव यह सभी अपनी – अपनी दृष्टि से लोककथा को उद्वलित करते हैं।

[८](आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का इस संदर्भ में अपना ही उल्लेखनीय भाव है। उनके मतानुसार ''लोककथा शब्द मोटे तौर पर लोक प्रचलित उन कथानकों के लिए वृवद्धत होता रहा है जो मौखिक अथवा लिखित परंपरा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्राप्त होते रहे है।)[८]

[९](इसी तरह से डॉ. सत्यगुप्त ने लोककथा के विषय में अपने शब्दबद्ध द्वारा यह व्यक्त करने का प्रयास किया है कि ''लोककथाओं में मानव मन की सब प्रकार की भावनाएँ, परंपराएँ तथा जीवन दर्शन समाहित है। भूत जानने की जिज्ञासा,

घटनाओं का सूत्र, कोमल पुरुष भावनाएँ, सामाजिक ऐतिहासिक परंपराएँ, जीवन दर्शन के सूत्र सभी कुछ लोककथा में मिल जाते है।'')[९]

अतः जहाँ तक कथा साहित्य का संबंध है उसमें यथार्थ और कल्पना का समावेश होता है। उसका काल्पनिक पक्ष भी यथार्थ के परिवेश से संतुलित होने के कारण लोकभाग्य तो रहता ही है और उसका यह लोकभाग्य रुप उस प्रदेश की परंपराओं और सांस्कृतिक अवधारणाओं को लेकर ही अग्रसर होता है। पिछले पृष्ठों पर हमने कुमाऊँनी लोक कथाओं के संदर्भ में परिचयात्मक विवरण दिया है। यहाँ हम उन सांयलिक कथाओं में कुमाऊँनी संस्कृति के परिव्याप्त प्रभाव को विश्लेषित करेंगे।

कथा में व्याप्त सांस्कृतिक मूल्यों का यथार्थ वर्णन :

लोककथा लोगों में प्रचलित और परम्परा को नित्य एक नए आयाम को जन्म देती है। कथाओं में सांस्कृतिक मूल्यों का पनपना इस तथ्य को प्रस्तुत करता है कि कथा चाहे हास्य कथा हो, रीति कथा हो, व्रत कथा हो, रुप कथा हो, उपालौकिक कथा हो, धार्मिक कथा हो, ऐतिहासिक या पशु – पक्षी सम्बन्धित कथा हो, उपदेशात्मक, मनोरंजनात्मक कथाएँ हो, परियों की कथा हो, देव गाथाएँ हो आदि कथाओं के निरुपण में यह सहज ही हो जाता है कि हर कथा में भाव उदवेक्ति करने के लिए कथा का कहना या सुनना अति आवश्यक हो जाता है। ऐतिहासिक कथाएँ जिस तरह से पुरुष और स्त्रियों से सम्बन्धित होती हैं, जिसमें राजा – रानी, महाराजा – महारानी, राजकुमार आदि का विवरण होता है इससे अधिक निकट सम्बन्धी कथा में ऐतिहासिक कथा अकबर, हरिशचन्द्र, औरंगजेब, रानी लक्ष्मीबाई आदि की वीरता का सविस्तार करते हुए सांस्कृतिक के नैतिक मूल्यों को इनमें देखा जा जाता है। राजा हरिशचन्द्र बलिदान के प्रतिक माने जाते हैं, जिन्होंने अपनी पत्नी और पुत्र का

बलिदान करने के पश्चात् स्वयं का बलिदान करने में भी पीछे नहीं हटे। अतः सत्य की पताका का चरित्र और उसका चित्रण राजा हरिशचन्द्र के त्याग को आज भी हमारी संस्कृति हमारे संस्कार का एक अहम् हिस्सा मानती है। उसी तरह अकबर न्याय के लिए प्रसिद्ध थे। लेकिन मुस्लिम होने के साथ – साथ उन्होंने राजस्थान की महारानी पद्मावती से राखी बँधवाकर इस तृत्य की रक्षा करने हेतु अकबर ने कच्चे धागे का सहारा लेते हुए पद्मावती (कर्णावती) को अपनी बहन स्वीकार किया और आज तक रक्षाबंधन का त्यौहार हमारी संस्कृति की विरासत के रुप में फल – फूल रही है।

आलौकिक कथाएँ :

लोककथाओं को अगर पूरी तरह से परखा जा सके तो आलौकिक कथाओं ने भी अपना वर्चस्व प्राचीन काल से बना रखा है। जिनमें जादू, राक्षस, परी आदि कथाओं को वर्णित करते हुए सिद्ध पुरुषों द्वारा चमत्कार, हास्य कथाएँ आदि मनुष्य के मानस पठन पर एक अमिट छाप छोड़ती हैं, जिसके फलस्वरुप यहाँ भी संस्कार और सांस्कृतिक इन विधाओं को सुसज्जित करते है। जैसे कि परियों की कहानी में जादूगर का अहम हाव – भाव होता था। किसी को भी वश में करना हो तो जादू के तंत्र मंत्र से वशीकरण किया जाता था। जो आज हमारी संस्कृति का आधुनिक दौर में एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। इसे दो तरीकों से किया जाता है। एक परियों की कहानी सुनाकर बच्चों के अन्दर वीरता के भाव को उदवेलित करना या नैतिक बोध को जन्म देना। यह आलौकिक कथाओं के उद्देश्य में शामिल हो। इसे परम्परा के रुप में भी ले सकते हैं। जादूगर आज अहम हिस्सा होने के साथ – साथ मनोरंजन के साथ –

साथ हिंसात्मक रुप का भी एक ऐसा मुद्दा बन चुका है जिसमें संस्कृति नाम मात्र ही है।

आलौकिक कहानियाँ काल्पनिक होने के साथ – साथ मनुष्य की आकांक्षाओं से बहुत दूर होती है और जिस तथ्य में सत्य नहीं वहाँ ना देव ना भवः है। लोककथाओं की परंपरा में पशु – पक्षी संबंधी कथाओं का चित्रण बड़ी ही सहजता से विश्रृंखलागत किया गया है। चूँकि पंचतंत्र की कथाओं के समान होने के कारण इन कथाओं में लोकमनोरंजन का भाव परिलक्षित होता है। गीदड़, भालू, बाघ, बकरी, चूहा, कुत्ता, बैल आदि कथाओं को जीवित करते है। इनकी अनुपस्थिति संदेशवाहक का रुप धरती है, जैसे हाथी और चूहा कहीं ना कहीं स्वयम् को आस्थाओं के प्रारुप के प्रांगण में विवरण करते हुए जान पड़ते है। जिस में संस्कृति का मूल मोटे प्रतिकात्मक का भाव देखने को मिलता है। जैसे गणेश जी का नाम आते ही उनकी सवारी और उनके सूँढ़ का विस्तृत कथाचित्रण मानो स्वयं ही वर्णित करता है।

पात्रों के आचरण :

सांस्कृतिक का मूल भाव नीतिपरक कथाओं से गुजरते हुए कई रुपों में संस्कृति के परिवेश को बदलने या पनपने में सहायक सिद्ध होता है। जैसे बाल – कथाएँ, बाल – विवाह ये सभी समाज के सांस्कृतिक धरोहर ना होते हुए भी सामाजिक दस्तावेजों के साथ अपने तालमेल को बनाकर रखे हुए है।

प्रत्यक्ष रुप से मनःस्थिति पर चेतना का बदलाव होना बहुत ही जरुरी हो जाता है। जिसमें संस्कृति एवं सांस्कृतिक आचरण से एक नयी संस्कृति का जन्म होता है।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY 251 The M. S. University of Baroda

सामाजिक परिस्थिति और परिवेश :

सामाजिक परिस्थिति कहीं – कहीं अपने आप में बदलाव लाने हेतु कई परिवेश में स्वंय को ढ़ालती है। जिसमें बाधक तत्व अपनी ज्वलन समस्याओं के साथ सामाजिक कथाओं पर आक्रमक रुप से आचरण के द्वारा संस्कृति पर प्रहार करता है। अतः सामाजिक परिस्थितियाँ चाहे अपने – अपने कार्य द्वारा कितना ही अलग भाव पैदा कर ले। जैसे अकाल, बाढ़, धार्मिक समस्याएँ, सामाजिक समस्याएँ ये सभी सांस्कृतिक परिवेश को पूरी तरह से खंडित करने में सहायक सिद्ध होती है।

कथा में भौगोलिक विस्तार और वातावरण :

कथा में इस तथ्य की पुष्टि होना अति अनिवार्य हो जाता है कि कथा किस भौगोलिक विस्तार से जुड़ी हुई है। भौगोलिक विस्तार में कथा के पात्र का रहन – सहन, हाव – भाव उस क्षेत्र को परिभाषित करता है। जिसके दृष्टिकोण से कथा में आचार – विचार, संस्कार, सभ्यता, आदि तथ्यों का समावेश होने के साथ – साथ वहाँ की संस्कृति का भी पता चलता है। जैसे कि अलीबाबा चालीस चोर, तमस, सिंहासन बत्तीसी, मालगुडी डेज़, तेनालीरामा, ऐसी कई कथाएँ है जिसमें भौगोलिक विस्तार अथवा भौगोलिक वातावरण का प्रभुत्व देखने को मिलता है।

कथा की आंचलिक प्रवृत्ति :

कथा की क्षमता कथा का भाव, कथा पात्र का परिधान, आंचलिक परिवेश को परिलक्षित करता है। कथा के अन्दर समाहित प्रकृति चित्रण पहाड़ों का वर्णन, खेतों का वर्णन, आकाश का वर्णन, रात्रि की सुगबुगाहट का वर्णन यह सभी प्रकृति के निश्चित भावों को कथाओं में जैसे ही निश्चित होते है वह उस आंचलिक इकाई के परिवेश को मानो अपने शब्दों से भावों में स्वयं को परिमार्जित करते हैं। नदी, झरना,

सागर, हवाएँ ये सभी कथाओं के नायक या नायिका बनते हुए अपने अन्दर सांस्कृतिक मनोभावों को नयी आभा के साथ उदयमान होते हैं।

लोककथाओं में पशु – पक्षी :

जैसा कि पहले अध्यायों में हम लोककथा के बारे में बता चुके हैं। लोककथाओं की दृष्टि से इसके निम्न भाग हैं।

पशु – पक्षी संबंधी कथाएँ :

यह कथाएँ सुनने में बहुत अच्छी लगती है। जिस प्रकार पंचतंत्र की कहानियाँ होती है यह उन्हीं के समान है। इन कथाओं के माध्यम से हमें लोकशिक्षा, लोक व्यवहार और लोकविज्ञान का रुप देखने को मिलता है। इसमें करुणा, रोचकता, दया, हास्य आदि भरपूर मात्रा में होता है। जिस प्रकार से गीदड़, भालू, हाथी, बकरी, कुत्ता, चूहा आदि की कथाएँ हम बचपन से सुनते रहते है। इनको सुनने में परम आनंद की अनुभूति होती है तथा यह नौ रस से भरी होती हैं।

कुमाऊँ क्षेत्र में पशुओं की बोलियों को अपने रोजमर्रा के जीवन के अनुरुप ढ़ाला है जैसे – यदि किसी बछड़े की आवाज़ सुनी तो उसका मालिक कहता है हाँ बेटा अभी आता हूँ, भूख लगी है। उसको भूख नहीं होती तो दूसरी बात पूछी जाती है। पशुओं को भी बड़ा आनंद आता है।

काफल पाको एक ऐसी पक्षियों की कहानी है जिसमें एक पक्षी कहता है – काफल पाको मैं नी चाखो,

दूसरा पक्षी कहता है – पुर पुतई पुरै ....

इसके पीछे कथा है कि माँ तथा बेटी थे। माँ काफल की टोकरी में काफल तोड़कर बेटी को देखभाल के लिए कहकर खेत जाती है। परन्तु जब शाम को आती है तो टोकरी में काफल सिकुड़कर आधे हो जाते हैं। वह बेटी से पूछती है तूने खाये पर बेटी के मना करने पर भी वह उसको शंकावश मारती है तो वह मर जाती है। बाद में रात को वापस काफल ताजे हो जाते हैं और वह टोकरी फिर से भर जाती है।

तब माँ को अपने किये पर पछतावा होता है और उसकी पश्चाताप में मृत्यु हो जाती है तथा वह दोनों कहते हैं आज भी चिड़िया बनकर घूमते है तथा कहते हैं –

माॅ – पुर पुतई पुरै ....

बेटी – काफल पाको मैं नी चाखो .....

कुमाऊँ क्षेत्र में पशु हो या पक्षी सभी की बोलियों के पीछे कुछ ना कुछ कथा जुड़ी है। जैसे – ''काफल पाको मैंल नि चाखो, तिसमोली तीस तीस, पुर पुतई पुरै पुरै, भैं भुको मैं सिति, तीन खाटै की किफरी, जूँहो'' आदि बोलियों के पीछे कथाएँ जुड़ी हैं। निम्न पक्षी हैं – मुनाल, तीतर, चकोर, घिनौड़, सिहौल, कौवा, न्यौली, घुघुती, कफू, लम्पुछिया आदि।

सिन्टरी जिसके पीछे कथा है कि उसके बाल सिर पर इसलिए काले हैं, क्योंकि वह बहुत सारा तेल मिलने पर अपने सिर पर उड़ेल कर लायी थी तब से उसके सिर पर तेल लगाए जैसे बाल रहते हैं।

व्रत संबंधी कथाएँ :

कुमाऊँ क्षेत्र में रितिरिवाजों, परम्पराओं आदि से संबंधित व्रत होते हैं। जैसे – इर्वाष्टमी, जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, शिवरात्री, नवरात्री, रामनवमी, बटसावित्री, हरकाली, उत्तरायण, बैकुंठ चतुर्दशी, बसंत पंचमी इन अवसरों पर इनसे संबंधित

कथाएँ कही जाती है तथा मेले आदि लगते हैं। सब लोग मिलकर इन व्रतों को धूमधाम से मनाते हैं।

उत्तरायण के दिन भी व्रत रखते हैं जिसे कुमाऊँ में घुघुतिया त्योहार के रुप में मनाते हैं। बागेश्वर में उत्तरायणी का मेला लगता है। मकर संक्रान्ति के दिन हरिद्वार में स्नान करने का विशेष धार्मिक महत्व है कि यहाँ उस दिन नहाने से सारे पाप धुल जाते हैं तथा मन की सारी इच्छाएँ पूरी होती हैं क्योंकि हमारे पूर्वज हमसे मिलने आते हैं।

इसलिए सुबह उठकर नहा – धोकर एक दिन पहले बनाये घुघुत, वडे, पूरी कौवे को बुलाकर काले – काले कहकर छत पर सबसे पहले दिया जाता है फिर खाया जाता है। मान्यता है कि वह कौवे के रुप में हमारे पीतर बड़े – बुजुर्ग आते हैं।

गंगा दशहरा :

[१०](गंगा दशहरा राष्ट्रव्यापी पर्व है। जो प्रतिवर्ष जेष्ठी सुदी १० को मनाया जाता है। कुमाऊँ में ब्राह्मण लोग एक सफेद वर्गाकार कागज पर विभिन्न रंगों का वृत्त बनाकर उसके बाहर एक श्लोक लिखकर यजमानों के द्वार पर चिपका जाते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि इससे अग्नि, वज्रपात आदि प्राकृतिक प्रकोपों से घर की रक्षा होती है। इस अवसर पर ब्राह्मणों को चावल, अन्न और दक्षिणा आदि दी जाती है।

हरेला :

यह भी उत्तरांचल का प्रसिद्ध त्यौहार है। इसे कर्कसंक्रांति भी कहते हैं, जो सावन मान के प्रथम दिन मनाया जाता है। वैसे हरेला अन्य अवसरों पर भी उगाया जाता है किन्तु कर्कसंक्रान्ति हरेला या हरियाली का ही त्यौहार है। हरियाला के सम्बन्ध में 'अनेक कहावतें' और गीत प्रचलित हैं :

'काटयों क्वेरालू बनायो न्यार।

भोल की आलो हरयालो त्यार।'

आषाढ़ मास की २४ वीं तिथि को किसी बांस – लकड़ी के पत्तों के दोने या बर्तन में दूर हुई मिट्‌टी भर का उसमें पंच अन्न, गेहूँ, जौ आदि के दाने बो दिये जाते हैं, जिसे घर के भीतर रख दिया जाता है। बोने के दसवें दिन हरियाला तैयार हो जाता है। हरेला पूजा के बाद हरेला काट कर उसके तिनके कान और सिर पर धारण करते हैं तथा कुछ को गोबर के साथ दरवाजों की चौखट के ऊपर चिपका दिया जाता है।

इस दिन बैसी नाम से धार्मिक उत्सव का आयोजन भी किया जाता है। संक्रांति के दिन ग्राम देवताओं को हरेला चढाया जाता है। सभी ग्रामीण सामूहिक रूप से अपने ग्रामदेवताओं हरू, सैम, गोरिया, गंगनाथ आदि की धूप – दीप चढ़ा कर पूजा करते हैं। इसमें सभी ग्रामवासियों की उपस्थिति अनिवार्य होती है। ढोल – नगाड़ों के साथ रातभर लोक देवताओं की गाथाएँ गायी जाती है। बैसी पूजन पर प्रसाद के रूप में रोट बाँटा जाता है। बैसी कुमाऊँ क्षेत्र की प्राचीन पूजा पद्धति है।)[१०]

लोककथाओं में राजनैतिक विश्वास :

[११](किसी भी राज्य में जब शासक चुनते हैं तब वहाँ पर शासन व्यवस्था, नीतियाँ आदि राजनीति में शामिल होते है। इसी के आधार पर राज्य का विकास, हित – अहित होता है।)[११]

[१२](जब किसी भी राज्य का क्षेत्र में दीर्घकाल तक एक जैसी राजनीतिक परिस्थितियाँ होती हैं तो शासन एवं जनता की विशेष प्रकार की आदतें एवं व्यवहार

हो जाता है। इस प्रकार राजनीतिक संस्कृति में समाज की अभिवृत्तियाँ, विश्वास, भावनाएँ एवं मूल्य निहित होते हैं। जिनका संबंध राजनीतिक व्यवस्था से होता है।)[१२]

जैसे कि निम्न कथा में बताया गया है कि राजाओं को अपना ही खून वंश बढ़ाने के लिए चाहिए होता था। उदा – बुलांणीं चड़िक पिंजौर कथा में बताया गया है कि राजा ने अपना वंश तथा राज्य सुरक्षित और अच्छा रखने के लिए अपने छः मंत्रियों की शादी तथा अपनी शादी एक ही घर की सात बहनों से की। परन्तु उसकी रानी सात बहनों में सबसे छोटी होने से बाकी मंत्रियों की पत्नियाँ (अपनी छः बहनों) के ईर्ष्या का भोग बनी तथा उसका वंश आगे नहीं बढ़ पाया और अंत में सच्चाई की जीत हुई और कई सालों बाद राजा को अपनी रानी तथा वंश चलाने वाला मिल गया। उस समय जो राजा बनता था उसी के परिवार से दूसरा राजा बनता था।

वैसे तो अभी भी यह परंपरा चली आ रही है क्योंकि जो शासन चलाने वाला होता है वह संस्कारी, गुणवान, बुद्धिमान तथा उदार होता है तथा उन्हीं के वंश में से ऐसा ही राजकुमार राजा बनता है।

इसी प्रकार से गोलू देवता की एक और कथा है कि चम्पावत के राजा हलराय की सात रानियाँ थी। उनको सातवीं रानी से पुत्र प्राप्त हुआ परन्तु छःहों रानियों ने ईर्ष्यावश उसे मिटाने की कोशिश की पर अंत में वही पुत्र राजा बना।

इस लोककथा में बताया गया है कि यह उसके गुणों से ही उसने सिद्ध किया कि वह एक संसारी परिवार का क्षत्रिय है। कहने का अर्थ यह है कि यदि राजा को अपना वंशज नहीं मिलता तो वह कितनी भी शादी कर सकता था पर उसका अपना खून ही राजा बनता था। तो यह अनेक विवाह प्रथा प्रचलित थी परन्तु नारियाँ सिर्फ एक ही विवाह करती थी यदि राजा वीरगति को प्राप्त होता था तो रानियाँ जौहर कर

लेती थी या कभी दूसरी शादी नहीं करती थीं। यदि अपना ही वंशज प्राप्त ना हुआ हो तो बहुत आवश्यक हो तो वह अपने ही घर के देवर या ससुर से शादी करती थी जैसा कि इस लोककथा से हमें ज्ञात होता है। जिसमें अपने गाँव को फिर से बसाने के लिए पति की मृत्यु के बाद बहु अपने ससुर से ही शादी कर लेती है।

लोककथा में धार्मिक विश्वास :

कुमाऊँ क्षेत्र के लोग धार्मिक बहुत ज्यादा है यहाँ पर यदि एक पत्थर को भी टीका लगा दें तो उसी की पूजा शुरु कर देते हैं। यह अंधविश्वासी भी बहुत हैं क्योंकि पूजा – पाठ वाले ब्राह्मणों ने पुराने समय में अपना पेट भरने के लिए लोगों में धर्म के नाम पर अंधविश्वास फैला दिया था जो आज तक बरकरार है। यदि कोई बीमार हो जाता है तो कहते हैं तुम्हें निम्न मंदिर में यह – यह चढ़ावा देना होगा। यह भगवान गुस्सा हुए हैं बकरी, मुर्गी, भैंसा काटना पड़ेगा, यहाँ पर वृक्ष, पत्थर, नदी, पर्वत, घाटी, शिखर या गुफा आदि में किसी ना किसी देवता का वास माना जाता है तथा उसे नियमित रुप से पूजा जाता है।

जैसा कि इस कथा में एक बुढ़िया अपने नाति के साथ रहती है जब नाति काम करता है तब वह दोनों उस दिन का खाना खा पाते हैं। इस पर एक दिन दो पति – पत्नी उनके घर शरण में आ जाते हैं। तब नाति उनको भी अपने खाने में से आधा करके खिलाता है तथा अपने पास रखता है। वह उसे ऐसी जड़ी – बूटी देते हैं कि राजा का कोड़ ठीक हो जाता है तथा वह नाति धनवान बन जाता है और राजकुमारी से शादी कर लेता है। वह उन दोनों को शिव – पार्वती मानता है। ऐसी दंत कथा है तो अच्छे लोगों को भगवान मानकर उनकी पूजा शिव – पार्वती के रुप में करना यह भी लोगों की आस्था है।

हाट – कालिका कुमाऊँ के अठारह काली मंदिरों में गंगोली हाट – कालिका सर्वप्रमुख है। इसके संबंध में ऐसा कहा जाता है कि [१३](पूर्व में जब महाकाली चंचल होकर रात्रि में जोगेश्वर को आवाज़ देती थी तो उसकी आवाज सुनने वाले की मृत्यु हो जाती थी। इसलिए लोगों ने उधर जाना छोड़ दिया था। आदिगुरु शंकराचार्य जब जोगेश्वर आये तो भगवान जोगेश्वर को लोहे के पात्र से ढक दिया गया। तब से काली ने आवाज देना बंद कर दिया।)[१३]

जैसा कि इस कथा में कहा गया है कि वह अत्यंत निर्धन लड़की थी पर भगवान की भक्ति तथा श्रृद्धा से वह रानी बन गई तथा उसकी माँ पूजा – पाठ नहीं करती थी तो वह बेटी के चले जाने से फिर से निर्धन बन गए परन्तु बेटी के समझाने पर पूजा – पाठ की तो वह गरीब ब्राह्मण फिर धनवान बन गया।

इस कथा में भगवान के प्रति धार्मिक विश्वास को बताया गया है। नाग राजकुमार की दंतकथा में भी भगवान के ऊपर विश्वास होता है इसलिए एक नाग मनुष्य बनकर राजा को बेटे के रुप में प्राप्त होता है।

इस प्रकार से अनेक कथाएँ हैं जो लोगों द्वारा कही गई हैं पर उनका प्रमाण नहीं मिलता है। कुछ का मिलता है मगर यही उनके धार्मिक संस्कार में पूरी तरह रच बस गया है जिसको अलग नहीं किया जा सकता और यही पीढ़ी दर पीढ़ी से चला आ रहा है। इसी तरह पूरे भारतवर्ष में इस प्रकार के भिन्न – भिन्न जाति धर्म के होते हुए भी उनके आचार – विचार धर्म कहीं हद तक एक जैसे हैं। जैसे – 'कलुवा' एक चरवाहा था जिसको भगवान गोरखनाथ (शंकर भगवान) की कृपा से कुमाऊँ में देव के रुप में पूजा जाता है। यह लोगों की आस्था है कि एक चरवाहे को भी भगवान की

कृपा प्राप्त होकर देव के रुप में पूजा जाता है। यह कथा कुमाऊँ क्षेत्र में भगवान के प्रति धार्मिक भावना को व्यक्त करती है।

दूसरी एक और कथा में शनि – मंगल भगवान की दशा से ग्रस्त ब्राह्मण को बताया गया है कि जो शनि – मंगल भगवान हैं वह आकर उस ब्राह्मण का धन लूट लेते हैं तो वह ग़रीब ही रहता है। ऐसा मानना कि भगवान खुद वेश बदलकर आते हैं और सारा धन लूटते हैं बाद में राजा विक्रमादित्य के साथ उनकी दशा बनकर चले जाते हैं तथा उनका बुरा करते हैं। ऐसी धार्मिक भावना, विश्वास है।

इसी तरह बिरुड पंचमी तथा सातूँ – आठूँ के व्रत की कथा है जिसका कोई आधार नहीं है परन्तु सालों से कथा प्रचलित है जो धर्म में शामिल हो गई है। यहाँ पर स्थित बैजनाथ, गंगानाथ, चित्रशिला, नैनादेवी, गड़देवी, भीम जोगेश्वर, हाट – कालिका, देवीधुरा, भविष्यबदरी, आदिबदरी, सीतावनी, पांडुकेश्वर, जोशी मठ, वृद्धबदरी, तुंगनाथ, गोपेश्वर, ऊखीमठ, रुद्रनाथ, सिद्धपीठ कालीमठ, त्रियुगी नारायण, आदि देवताओं के मंदिर हैं जिससे लोगों की आस्था तथा विश्वास जुड़े हुए हैं।

बैजनाथ के बारे में कथा है कि भगवान शिव के द्वारा कामदेव के दमन के पश्चात् पार्वती को ब्याहने जाते समय वहाँ ठहरकर गणेश का पूजन किया था।

जागेश्वर तीर्थ के बारे में धार्मिक मान्यता यह है कि पहले शिव झाकरसैम में तपस्या करते थे तथा इसके निकट ही वशिष्ट ऋषि अपनी पत्नियों सहित आश्रम में रहते थे। आश्रम की स्त्रियाँ जब हवन की लकड़ियाँ लेने वन में गयीं तो वहाँ उन्होंने तपस्या में लीन नग्न शिव को देखा। शिव को देखकर वे उनकी ओर आकर्षित हो

गयीं। जब वशिष्ठ मुनि को इसका पता चला तो उन्होंने शिव को श्राप दे दिया कि जाओ यहाँ तुम्हारा लिंगपात हो जाएगा।

जागेश्वर में दो मंदिर हैं। वृद्ध जागेश्वर का मंदिर चोटी में है। दूसरा तरुण जागेश्वर भगवान विष्णु द्वारा स्थापित किया गया है। जागेश्वर के मुख्य मंदिर में ज्योतिर्लिंग स्थापित हैं। प्रवेशद्वार के एक ओर भृंगी और दूसरी ओर नंदी की मूर्तियाँ है जो शिव के विशेषगण हैं।

इस प्रकार से कुमाऊँ में धर्म के प्रति अटूट निष्ठा देखने को मिलती है।

[१४](उत्तरांचल के जन बांधण को भी पशुओं का देवता मानते हैं। भिन्न – भिन्न स्थानों में इसकी पूजा की पद्धति भिन्न है। गढ़वाल के अनेक स्थानों में भैंस के प्रथम बार बच्चा जनने पर यह पूजा की जाती है। किसी जल युक्त नम स्थान में जाकर नैवेद्य – प्रसाद आदि का भोग लगाकर पूजन किया जाता है तथा इस अवसर पर बकरा मारा जाता है।

इसी प्रकार कुमाऊँ में जिस दिन गाय का बछड़ा ग्यारह दिन का होता है, उस दिन बधाण की पूजा की जाती है। यहाँ पर भी किन्हीं स्थानों पर इस अवसर पर देवता को बलि दी जाती है। तत्पश्चात् बारहवें दिन से गाय का दूध पिया जाता है, इससे पूर्व नहीं।

गड़देवी के जागरों में उल्लेख किया गया है कि लंकागढ़ में अहंकारी राजा, रावण रहता था। एक बार उसने यज्ञ करके इन्द्रासन पर आधिपत्य का निश्चय किया। जिसके लिये उसने अनेक तरह से अत्याचार कर हवनसामग्री के लिये धन एकत्र किया।

सभी देवता भयभीत होकर ब्रह्मा के पास गये तथा उन्हें अपना संकट बताया किन्तु उन्होंने सभी को यग कह कर विष्णु के पास भेज दिया कि वे ही तुम्हारे दुखों का हरण कर सकते हैं। विष्णु ने कहा कि त्रेता में जनकपुरी में राजा जनक के घर सीता का जन्म होगा तभी रावण का विनाश हो सकता है।

सतयुग में पाँच तपस्वी सनत्कुमार हुये। रावण के दूत कर वसूल करने उनके पास भी पहुँचे तो उन्होंने कहा कि हमारे पास देने को कुछ भी नहीं है। हम तुम्हारा कर लंका ही पहुँचा देंगे। तत्पश्चात् निर्दयी भूमि – कुरुक्षेत्र से मिट्टी मंगाई गयी तथा घड़े का निर्माण किया गया। तपस्वियों ने मंत्र द्वारा विषधर नाग का आह्वान किया। विषधर ने पेट भरकर विष निगला तथा चतुर्मुखी घड़े में समस्त विष उगल दिया। किन्तु वह नहीं भरा। तब उसमें मुर्दे की हड्डियाँ, चिता की राख तथा मुर्दों के सिर के बाल और नाखूनों से भर दिया तथा उसका ढ़क्कन मजबूती से बंद कर दिया। फिर बिणभाट को बुलाकर घड़े को लंका भिजवाने का आदेश दिया। किन्तु समुद्र पार करते समय वह घड़ा समुद्र में पहुँच गया।

समुद्र में पड़ा घड़ा किसी मछुवारे के जाल में पड़कर बाहर आ जाता है। किन्तु तभी उस स्थान का दैत्यराज, प्रकट होकर धीवर से कहता है कि मेरे स्थान से निकले इस घड़े का बँटवारा करो। भीतर की वस्तु मेरी तथा बहार का घड़ा तुम्हारा होगा। घड़ा खोलने पर उसके भीतर से एक सुन्दर कन्या निकलती है। जिसे दैत्यराज अपने साथ पाताल लोक ले जाता है। अल्पवय होने के कारण दैत्यरानी द्वारा उसे बारह वर्ष बाद आहार के रूप में खाया जाना निश्चित किया गया। तत्पश्चात् वह कन्या दैत्यराज के दो छोटे – पुत्रों के साथ ही बड़ी हो गयी।

बारह वर्ष बाद श्रावण मास में नारायणीदेवी की पूजा की तैयारी होने लगी। दैत्यराज ने अपने अस्सी सौ बिरादरों को आमंत्रित किया। तब दैत्य के पुत्रों ने दुःखी मन से उस कन्या से कहा कि आज तक तुम हमारी बहिन की तरह हमारे साथ रही हो किन्तु आज रात को नारायणीदेवी के समक्ष तुम्हारी बलि दी जायेगी। इस बात को सुनते ही उस कन्या ने दोनों बालकों को मुँह में डालकर निगल दिया। तत्पश्चात् थोड़ी देर में ही बच्चों की खोज होने लगी। अस्सी सौ दैत्यों ने चारों ओर छान मारा किन्तु उन बालकों का कहीं पता नहीं लगा। तब वे उस बालिका से पूछने लगे कि बालक तेरे ही साथ रहते थे, वे कहाँ हैं? बालिका ने मुँह खोलकर उन दोनों बालकों को दिखा दिया। फिर क्या था सभी दैत्य बालिका पर टूट पड़े। किन्तु उस अलौकिक कन्या ने काली का रूप ले लिया तथा एक – एक करके सभी दैत्यों को मौत के घाट उतार दिया।

थककर चूर होने पर वह कन्या विश्राम करने लगी। उसे गहरी नींद आ गयी। निकट ही दैत्यराज की पत्नी छुपी हुई थी। उसने उस कन्या को उठाकर पुनः उसी घड़े में बंद करके समुद्र में फेंक दिया। समुद्र की एक बड़ी मछली उस घड़े को निगल गयी। कालान्तर में वह मछली किसी मछुवारे के जाल में फंस गयी। उसकी सुन्दरता को देखकर मछुवारे ने उसे अपने राजा रावण को दे दिया। रावण ने मछली को अपने हाथों से काटा, किन्तु उसे तब आश्चर्य हुआ जब मछली के पेट से घड़ा निकला। उसने सोचा कि यह कोई जादू का घड़ा है। इसीलिये इसे अपने राज्य में रखना ठीक नहीं है। अतः उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि घड़े को मेरे शत्रु की धरती में गाड़ आओ।

निशाचरों ने छिपकर उस घड़े को जनक की राज्य की सीमा में गाड़ दिया। फलतः जनकपुर में सूखा पड़ गया तथा बारह वर्ष तक अकाल रहा। तब ब्रह्मा ने

जनक से कहा कि जब तुम स्वयं अपने हाथों हल लगाओगे तभी अकाल दूर हो सकता है। जनक ने जवाब दिया कि मैं चन्द्रवंशी हूँ हल कैसे चला सकता हूँ? ब्रह्मा ने राय दी कि यदि शेर तथा भालू को बैल तथा सोने – चाँदी के हल बनाये जाये तो दोष नहीं लगेगा। राजा जनक ने वैसा ही किया। पाँचवी बार में वहाँ से घड़ा निकला तथा घड़े से दिव्य रूप वाली कन्या सीता प्रकट हो गयी। जनक ने उसका पालन – पोषण अपनी कन्या की तरह किया।

शीघ्र ही जनकपुरी में घनघोर वर्षा हो गयी और वह खाली घड़ा बहकर पुनः लंका जा पहुँचा तथा वहाँ घूमने लगा। रावण घड़े को देखकर कहता है कि अब इस घड़े को कहाँ डाला जाये? इसके समाधान के लिये गुरु शुक्राचार्य ने कहा कि लंका के बाद विलंका तथा फिर तिलंका है। तिलंकागढ़ में एक सूखा सीमल का वृक्ष है। घड़े को उसी वृक्ष के खोखले में रख दिया गया। खाँसी, दमा, खाज, खुजली जैसे संक्रामक रोगों से समस्त लंका पीड़ित हो गयी।

इसके उपचार के लिये गुरु रामदास ने कहा कि छत्तीसयोजन ऊँचा शिवालिक बनाकर उसके मध्य इस घड़े की स्थापना करनी होगी तभी दोष का निवारण हो सकता है। कालान्तर में इसी मन्दिर के घड़े से घड़देवी की उत्पत्ति हुई।

एक बार लंका के दैत्य समुद्र में पानी पीने आये तो उनकी दृष्टि उस अलौकिक कन्या पर पड़ी। उन्होंने उस कन्या से कहा कि हमारी सोने की लंका है। तुम हमारे साथ चलो। देवी कहने लगी कि मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ किन्तु शर्त यह है कि तुम सजधज कर आओगे तथा मैं तुम सबको लोहे के पाटे में जोतूँगी। सब दैत्य तैयार हो गये दैत्यों को पाटे में जोतकर उनकी घर की तरफ भेज दिया गया। तब उस अलौकिक देवी ने सोचा कि यह पापियों की धरती है अतः अब किसी छायादार, पानी

से युक्त भूमि में चली जाना ही उचित होगा। तब घड़देवी ने उत्तरांचल की छायादार, जल से युक्त धरती की ओर आगमन किया तथा इसी देवभूमि को सदा के लिये अपना निवास स्थान बना लिया।

कत्यूर राजवंश में बिरमदेव एक अत्याचारी राजा के रूप में कुख्यात है। कहा जाता है कि उसने अपनी मामी दुलापधानी से व्यभिचार किया था। बिरमदेव की माता जियारानी का रानीबाग में बाग था।

नैनीताल जिले के रानीबाग नामक स्थान पर प्रतिवर्ष उत्तरायणी के पर्व पर एक गुफा के निकट जियारानी के जागर गाये जाते हैं। जियारानी को अनेक स्थानों में देवी के रूप में पूजा जाता है। महिलायें अपने मनवांछित वर एवं सुहागरक्षा के लिये इन्हें पूजती हैं। कुमाऊँ में इनसे संबंधित अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। जियारानी का जागर इस प्रकार गाया जाता है :

'आ .... जिया .... आ

निलकंठ माज धरमवंती जिया।

आ .... जिया .... आ

महादेव ज्यून की तीन ला बैणी छिन

जेठी छी गंगादेई मंजिलो जिया

निकासि कन्नरा।

गंगादेई बिवाई छ राजा पृथ्वी साईं।'

एक बार जब फिरोजशाह की सेना कटेहर में प्रविष्ट हुई तो वहाँ का राजा हरिसिंह राज्य छोड़कर कुमाऊँ में जा छिपा था। उन दिनों कुमाऊँ में कत्यूर राजा

पृथ्वीपाल का शासन था। उनकी रानी मालवा के प्रतापी क्षत्रिय महाराज खाती की कन्या जिया थी। जिसके सत और लज्जाशीलता की अनेक चर्चायें थीं। उसे धर्मात्मा किन्तु निःसन्तान वर्णित किया गया है।

जियारानी के जागर में वर्णन मिलता है कि एक बार वह चित्रशिला (रानीबाग) में स्नान करने गयी। उसके सिर का बाल नदी में बहकर किसी सैय्यद पठान के घोड़े से उलझ गया था। बाद में पठान उसे घोड़े पर चढ़ाकर ले भागा। राजा पृथ्वीपाल कत्यूरी वीर था, फिर भी अपनी पत्नी को नहीं बचा सका। फलतः जियारानी तुर्क सेना द्वारा अपहृत कर ली गयी।

तुर्कां के अधीन जियारानी ने पठानों से यह शर्त रखी कि बारह वर्ष तक तुम मेरे पितृतुल्य रहोगे, यदि इस बीच मेरी खोजखबर नहीं ली गयी तो मैं तुम्हारी बन जाऊँगी। पता लगने पर जियारानी को तुर्कां से छुड़ाने के लिये नौलाख कत्यूरियों का दल बिरमदेव के भतीजे हथियाकुवँर के नेतृत्व में तराई में उतर पड़ा तथा उसे छुड़ाकर ले आये। जबकि अन्य लोक प्रसिद्ध गाथा के अनुसार काठगोदाम के चित्रशिला के पास जियारानी सती हो गयी थी।

प्रतिवर्ष उत्तरायणी के अवसर पर रानीबाग में जियारानी का मेला लगता है। लोकमतानुसार यहाँ स्थित एक गुफा में जियारानी ने तपस्या की थी। उत्तरायणी के अवसर पर यहाँ जियारानी के जागर के साथ ही कत्यूर राजाओं की वंशावली तथा रानीबाग के युद्ध में जियारानी की अद्‌भुत शौर्यगाथा गायी जाती है। कहा जाता है कि कत्यूर सम्राट प्रीतमदेव ने समरकंद के सम्राट तैमूरलंग की विश्वविजयी सेना को शिवालिक की पहाड़ी में परास्त किया था।)[१४]

भूत – प्रेत संबंधी कथाएँ :

कुमाऊँ क्षेत्र में भूत – प्रेत में अथाह विश्वास है किसी की भी मृत्यु होती है तो कुछ दिनों बाद यदि घर में कुछ बुरा होता है तो कहा जाता है कि उसकी आत्मा भटक रही है तथा तंत्र – मंत्र की विद्या से उसको बुलाकर उसके नाम से जो तांत्रिक होते है उनको रुपये तथा जो वस्तु आत्मा माँगती है वह दी जाती है तथा वह तांत्रिक आत्मा के बहाने खुद लेकर जाता है। कथाओं में भटकी हुई आत्माएँ भूत – प्रेत बन जाते हैं।

इनमें निम्न कथाएँ हैं – बिल्ली, दैत्य, सियार, भैंस, बुढ़िया का नाती, ताल का दैत्य, गधेरे का भूत आदि।

इन कथाओं में अंधविश्वास, शुभाशुभ तथा वीरभाव आदि देखने को मिलता है।

ऐसी लोककथा है कि यदि इच्छायें पूरी ना हो या असमय मृत्यु हो जाए तो वह व्यक्ति भूत बन जाता है तथा भटकती आत्माएँ अपने स्वजनों को आपत्ति में डालती रहती है। इनको देवता तो नहीं मानते परन्तु भय से देवता से अधिक मानते हैं तथा पूजा अर्चना करके समय – समय पर चढ़ावा देते हैं।

दूसरी आत्माएँ वह होती है जो परिवार के बाहर की होती हैं इनको भी पूजा करके विधियाँ करते हैं। कालू भण्डारी रणभूमि में मारे गये थे तथा उनकी आत्मा किसी व्यक्ति के शरीर में आती है और भयंकर युद्ध कौशल का नृत्य करती है इनकी आत्मा की शांति के लिए विधिवत् पूजन किया जाता है।

कालू भण्डारी मल्लों में श्रेष्ठ मल्ल था उसका निवास स्थान भी सुखी थी। एक दिन उसने स्वप्न में एक सुन्दरी हिमालय में देखी और उससे शादी करने उसी स्थान

की ओर चल दिया तथा उसके पिताजी से उस सुन्दरी (ध्यानमाला) का हाथ माँगता है तब उसके पिताजी कहते हैं यदि तुम मेरे राज्य में आये हुए पाँच भड़ को परास्त कर दोगे तो मैं तुम्हारा ब्याह ध्यानमाला से कर दूँगा। कालू भण्डारी उनसे लड़ने गया तब ध्यानमाला के पिता ने ध्यानमाला का ब्याह निश्चित कर दिया तब कालू भण्डारी के सपने में उसने ध्यानमाला को रोते देखा तो उसने वापस उसके पास आकर कहा तुम छः फेरे लेना साँतवा फेरा मत लेना तब तक मैं आ जाऊँगा। ध्यानमाला ने ऐसा ही किया। उसने साँतवें फेरे के वक्त कहा मैं अपने गुरु को देखना चाहती हूँ। तभी सातवाँ फेरा लूँगी। मेरे गुरु तलवार के नाच में दक्ष हैं । मैं उनका नाच देखना चाहती हूँ। तब कालू भंडारी तलवार का नाच दिखाता हुआ आया तथा सारे विरोधियों को काट दिया और भागने लगे तो ध्यानमाला के भाई ने धोखे से कालू भण्डारी को काट दिया और उसकी अतृप्त आत्मा भटकने लगी तब से उसकी पूजा करने लगे।

प्रकृति संबंधी कथाएँ :

इस क्षेत्र में वनस्पतियों, फूलों, पहाड़ों, नदियों, गुफाओं, ऊँचे टीले, देवदार, बुरूँश, प्यौली, भिटारू के फूल, बदरी हिमाल आदि अनेक लोककथाएँ यहाँ छिपाए हुए है।

इसी प्रकार से एक फूल जो पीले रंग का है उस प्यौली की कथा है कि वह पिछले जन्म में एक नववधू थी। एक दिन वह पानी भरने नदी के पास गयी वहाँ पानी में उसे अपने प्रेमी की (भुपू) की परछाई दिखी। उसके प्रेमी ने फूलों की माला उसके गले में डाली दोनों को शाम हो गयी। इस घटना का जब प्यौली के पति को शाम को घर लौट आने पर पता चला तो उसने उसे मार दिया। इस वजह से वह प्यौली का फूल बन गयी। वह पवित्र थी। इसीलिए आज यह उत्सव कुमाऊँ में बड़ी धूमधाम से

उस प्यौली के फूल को पवित्र मानकर बालिकाएँ गाँव के हर द्वार पर डालकर फूल फूल देई कहकर डालती हैं तथा उस घर से अन्न तथा भेंट लेकर आगे बढ़ती हैं।

[१५](यहाँ पर प्रचलित गाथा के अनुसार उनका जन्म चाम के वृक्ष से माना गया है। जिसका जन्म लेते ही दानव जाग उठे थे। राम – रावण युद्ध के पश्चात् राम के अयोध्या लौटने पर विधिवत् राम का राजतिलक किया गया। किन्तु कुछ समय बाद ही सीता को पुनः निष्कासित कर दिया गया था। इसी प्रसंग पर आधारित स्थानीय गाथा का कुमाऊँगी में लघु अंश प्रस्तुत है।

''तब मेरी सीता लै वे

सारी लंकापति की तस्वीर खैंचि हाला

लंका सौ साक्षसों की सेना रे

राच्छसों की सेना रे सजाई हाला।''

झुमैलो एक नृत्य है जो प्राकृतिक वर्णन तथा मायके की स्मृति में गाया जाता है। यह बसंतपंचमी से आरंभ होकर विषुवत संक्रांति तक चलता है। जिसमें कहा जाता है कि विवाहिता जो मायके गयी है जो ससुराल में कठिनता भरे जीवन को व्यक्त करती है। बसन्तऋृतु में धरती सौन्दर्य से खिल जाती है। तो लोग खुशी से झूमकर प्रकृति का स्वागत करते हैं।)[१५]

[१६](ढोलसागर को एक कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसे ईश्वरीवाच तथा पारवत्यूवाच कह कर सवाल – जवाब के रूप में कहा गया है। कथा में शिव, निरंकार, निरंजन, निर्विकार शून्य रूप सब एक हैं। आरम्भ में ऊँ, माता, पिता और गुरुदेवता का आदेश लगाया गया है। विष्णु का कमल से उपजना, कमल से छूटने पर चेते और ऊँकार शब्द हुआ सात द्वीप, नौ खंड रचे गये। पृथ्वी में वायुमंडल,

तेजमंडल, मेघमंडल, गगनमंडल, अग्निमंडल, हीनमंडल, चंद्रमंडल, सूर्यमंडल, तारामंडल, बुध कुवेर, गगन अगति, ब्रह्मा, विष्णु, शिव निराकारमंडल तथा बैकुंठमंडल रचे। इसके बाद ढोल की शाखा और उसकी उत्पत्ति के विषय में बताया गया है। ढोल के निर्माण डोरी चढ़ाने, मूल शाखा तथा शरीर के विषय में तथा शाखाओं का वर्णन मिलता है। ढोल के बाद बेदती, देवों का नाम आया है। ढोल की बेदणी के विषय में प्रकाश डाला गया है। ढोल की डोरी चढ़ाते समय क्या ताल कहे जाते हैं? दश दिशाओं में कौन – कौन से ढोल बजते हैं? इसी प्रकार शब्द और ढोल के उपजने की बात बार – बार दुहरायी गयी है। सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलयुग में हुए ढोलियों के नाम दिये गये हैं। चारवेद को बजाने के ताल और शब्द मिलते हैं। बाद में सर्वत्र धौं – धौंकार तथा उसी दिन औजी के उपजने की बात कही गयी है। पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि पृथ्वी निरंकार थी, निरंकार से साकार हुई। थल जल में अंडा हुआ। अंडा फूटा, नौ खंड उपजे। निराकार गोसांई, से ब्रह्मा उपजे। अंग मलकर विष्णु और भौं मलकर भोलानाथ उपजे। पाँव मलकर पार्वती उपजी। इस प्रकार गोसाई ने पृथ्वी रची। स्वर्ग में इन्द्र तथा पालात में बासुकी रचे। कुरम उपजाया और उसके ऊपर पृथ्वी रख कर तैतीस करोड़ देवता थरपे। तब महादेव ने पार्वती का सोलह श्रृंगार कर उसे नचाया।

पश्चात् छत्तीस बाजे गिनाये गये हैं। अगवान के बाद कुंडली तथा कसणी के नाम पूछे गये हैं। धूंधकार से वादी विवादी सुनकर में आत्मा, निरंजन का नाव बताया गया है। शम्भु निरंजन के उत्पन्न होने के बाद प्रथम दिन, बार बाजे चास के मुख बोल बताने के बाद चकार के शब्दों का वर्णन मिलता है। घर – अघर और स्वर्ग, मृत्यु, चौरासी लाख योनियों के विषय में कथाकार के द्वारा बताया गया है। अपुछे के घर माता, विसनु घर – पिता तथा बाद में बार गिनाये गये हैं। महीने और तिथि – मिति

का उल्लेख किया गया है। योग – जोग के बाद बारह मासों का नाम गिनाये गये हैं। ऋतुओं के नाम गिनाने के बाद इति पारवती ईनकार संवाद सामवेदन्त गीत ढोल सागर प्रथम खंड समाप्त कहकर कथा समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार कथा से अधिकांश भाग में पृथ्वी की उत्पत्ति, निरंकार, निराकार शब्द, शून्य और घट की बात अधिक है। इसके बाद कथा के बड़े भाग में ढोल की उत्पत्ति, ढोली के स्थान, ढोल के कसने, विविध युगों के ढोल वादकों के नाम गिनाये गये हैं।

कथा का एक छोटा सा भाग ही ऐसा है जिसमें ढोल के शब्दों और तालों के विषय में जानकारी दी गयी है। फिर भी इसमें ढोल सागर के सामान्य विविध प्रकार, उसकी उत्पत्ति, उसे कसने और अंगुलियों द्वारा उसके विविध शब्दों और तालों के विषय में सामान्य जानकारी दी गयी है।)[१६]

[१७](यह देवोपासना की ताल है। प्रस्तुत ताल से उपास्य का रौद्ररूप अभिव्यक्त होता है। भय इसका स्थायी भाव है। इसका उपयोग नरसिंह की उपासना धामद्यो की चौरास तथा काली की उपासना में किया जाता है। जब लय आरम्भ में द्रुत होने की ओर बढ़ती है तो उसे 'चौरास' कहते हैं तथा लय अति द्रुत हो जाने पर यह 'सुल्तान चौक' कहलाती है।

ऐसा विश्वास है कि ढोल बजाने वालों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के कारण जिस गाँव में भितकचौक ताल बजायी जाती है वह गाँव समूल नष्ट हो जाता है। तब उस गाँव को अनिष्ट से बचाने के लिये बाजगीर द्वार 'भैलचोक ताल' बजाना अनिवार्य होता है। धुँयेल के बोल इस प्रकार हैं – झे ग झे गु तु झें गु त ग तु।)[१७]

[१८](उत्तरांचल के पर्वत श्रृंगों पर देवताओं का निवास है तो यहाँ की कन्दराओं और गुफाओं में ऋषियों का। प्राचीन युग में ही नहीं आज भी यह क्षेत्र ऋषियों का प्रमुख ध्यान केन्द्र है। वर्तमान में चौरासीकुटी इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में इस स्थान पर देवदत्त नामक किसी व्यक्ति ने तपस्या की थी। किन्तु शिव तथा विष्णु में भेद बुद्धि होने के कारण उसकी तपस्या भंग कर दी गयी थी। पुनः तप करने पर भगवान शंकर ने कहा कि हम दोनों को एक ही दृष्टि से देखने पर तुमको सिद्धि प्राप्त होगी। देवदत्त तथा उनकी पुत्री द्वारा तप किया गया तथा भगवान से उसी रूप में यहाँ अवस्थित होने की याचना की। फलतः भगवान सदैव इसी स्थान पर विराजमान रहते हैं। यह भी कहा जाता है कि राक्षसों के उत्पात से पीड़ित ऋषियों को यह साधानाभूमि प्रदान की गयी थी। तभी से इसका नाम ऋषिकेश पड़ गया। इसका पौराणिक नाम कुब्जाभ्र है। भरत मंदिर यहाँ का प्रसिद्ध मंदिर है। किन्तु यह दशरथपुत्र भरत का मंदिर नहीं अपितु इस मंदिर में (ह्रषिकेश) विष्णु की पाँच फुट ऊँची मूर्ति स्थापित है।

देवप्रयाग भागीरथी और अलकनंदा के संगम पर बसा हुआ, उत्तरांचल के पाँच प्रयागों में प्रमुख तीर्थ है। अलकनंदा और भगीरथी मिलकर यहीं से अपना विख्यात और सर्वमान्य 'गंगा' नाम धारण करती है। वराहरूपी विष्णु द्वारा जलप्रलय से पृथ्वी के बाहर निकाले जाने पर यही क्षेत्र सबसे पहले बाहर निकला था। सृष्टि की रचना सर्वप्रथम यहीं पर हुई थी।

केदारखंड में उल्लेख है कि इस तीर्थ के कुंडों में भगवान राम ने शिवलिंग स्थापित किये थे तथा तब से वे निरन्तर शिव में मन लगाकर इस स्थान में निवास करते हैं। रावण का वध करके ब्रह्महत्या के निवारण के लिये राम ने इस स्थान पर तपस्या की थी।

इस स्थान का नाम देवप्रयाग पड़ने का कारण यह कहा गया है कि प्राचीनकाल में देवशर्मा नामक ब्राह्मण ने यहाँ तपस्या कर विष्णु से वर माँगा था कि वे सदैव इस स्थान पर निवास करें। त्रेतायुग में उसका वरदान पूर्ण हुआ। पहले यह क्षेत्र रामावर्त कहलाता था। यहाँ आज भी चट्टान पर श्रीराम के दो चरण चिन्ह अंकित दिखाई देते हैं।

यहाँ का प्रसिद्ध मंदिर रघुनाथ मंदिर है। संगम से एक सौ एक सीढ़ी चढ़कर मंदिर तक पहुँचा जा सकता है। वर्तमान मंदिर गोरखाकाल (सन् १८०३ – १५) में जीर्णोद्धार किया गया था। इससे पहले (सन् १६६४ ई.) के मंदिर द्वार पर जड़े रजतपत्र में माधोसिंह भण्डारी उनके पुत्र गजेसिंह तथा पुत्रवधु मथुरावौराणी के नामों का उल्लेख किया गया है।

रघुनाथ मंदिर के पीछे हनुमान मंदिर तथा नीचे की ओर दो सती मंदिर हैं। पृष्ठभाग की चट्टान पर बामनगुफा और गोपाल गुफा मंदिर हैं। रघुनाथ मंदिर के दाईं ओर चट्टान की तरफ क्षेत्रपाल मंदिर है।

रुद्रप्रयाग तीर्थ अलकनंदा और मंदाकिनी के संगम पर स्थित है। मंदाकिनी का प्राचीन और स्तानीय नाम काली नदी है। वास्तविक रूप से इसका जल कृष्णरंग का दिखाई देता है।

यहाँ रुद्रनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है। जिसके भीतर शिवालिक स्थापित है। इस तीर्थ का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। लगभग ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व इस तीर्थ को रुद्रावर्त कहते थे, जहाँ स्नान और तीर्थ सेवन से स्वर्गलोक की प्राप्ति होती थी। केदारखंड पुराण के अनुसार इसी संगम क्षेत्र में नारद ने एक पाद होकर शिव की

तपस्या की थी और 'ओम् नमः शिवाय' का जप किया था। तत्पश्चात् रुद्र ने दर्शन देकर इन्हें अखिल राग सिखाये थे।

उत्तरांचल के पंच प्रयागों में कर्णप्रयाग को तीसरा स्थान प्राप्त है। सन् १८०८ ई. में कैप्टन रीपर के खोजीदल ने यहाँ एक मंदिर देखा था। जिसमें कर्ण की मूर्ति स्थापित थी। कत्यूरी युग में इस संगम पर सूर्य मंदिर स्थापित था। सन् १८९४ ई. में की भयंकर बाढ़ ने प्राचीन कर्णप्रयाग को बहा दिया था। तत्पश्चात् इसी क्षेत्र में कर्णेश्वर महादेव का मंदिर बना दिया गया तथा निकट ही एक सुन्दर मंदिर, उमा मंदिर के नाम से निर्मित किया गया। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में कर्ण ने इस स्थान पर सूर्य की उपासना की थी।

नन्दप्रयाग नन्दाकिनी और अलकनंदा के संगम पर स्थित है। केदारखण्ड में नन्दाकिनी को नन्दा कहा गया है। इसके तट पर कण्वआश्रम तथा नन्द नामक राजा के द्वारा सम्पन्न किये गये यज्ञ का उल्लेख मिलता है।

सन् १८९४ ई. में विरही गंगा की महाबाढ़ के विनाश से मन्दिर चत्वर और चट्टी बाजार आदि बह गये थे। इसके पश्चात् मंदिर की स्थापना कुछ ऊँचाई पर कर दी गयी। नन्दप्रयाग में प्रथम स्नानकर तब आगे यात्रा का विधान है। नन्दप्रयाग से नन्दागिरी तक का सम्पूर्ण क्षेत्र दसौली परम पवित्र है। यहीं रावण का तप क्षेत्र है। जहाँ उसने अपने दस सिर काटकर चढ़ाये थे। नन्दप्रयाग में प्राचीन काल से वैष्णवों की बस्ती रही है।

विष्णु प्रयाग धौलीगंगा और विष्णुगंगा नदी के संगम पर स्थित पाँचवा प्रयाग है। महाभारत के अनुसार विष्णुप्रयाग से ऊपर गन्धमादन क्षेत्र है। इस गंधमादन क्षेत्र में अनेक सुरम्य स्थान और सरोवर हैं। इसी तीर्थ में नारद ने अष्टाक्षरी मंत्र 'ओम् नमो

वासुदेवाय' के जप से विष्णु भगवान को प्रसन्न किया था। यहाँ पर विष्णुकुंड है तथा कुल दस कुंड हैं। धौलीगंगा और विष्णुगंगा मिलकर आगे अलकनंदा कहलाती है। इस तीर्थ में एक जलस्त्रोत चट्टानों के बीच से निकलता था जिसकी पौष्टिकता की बड़ी ख्याति थी।

यमुना जिस स्थान पर इस भूभाग में उतरी उसी स्थान का नाम यमुनोत्री है। यमुना का असली स्त्रोत यमुनोत्तरी से लगभग ६ कि.मी. कालिन्द पर्वत पर है। जहाँ एक बर्फ की झील है। किन्तु यहाँ पहुँचना गोमुख के समान सरल नहीं है। भागवतपुराण में उल्लेख है कि कृष्ण की पत्नी ने पूर्व जन्म में कालिन्दी के तट पर तपस्या की थी। इस कारण उसका नाम कालिन्दी पड़ा था।

केदारखण्ड में यमुना के उद्भव और नामकरण के सम्बन्ध में यह कथा दी गयी है, कि सूर्य की दो पत्नियाँ संज्ञा और छाया थी। संज्ञा से गंगा और छाया से यम, यमी उत्पन्न हुये थे। इस प्रकार गंगा, यमुना वैमातृक बहिनें थीं। माता का तिरस्कार करने से यम को श्राप के कारण भूतल पर उतरना पड़ा तो सूर्य ने यमुना को भी तीनों लोकों के हित की भावना से पृथ्वी में अवतरित करवा कर उत्तरवाहिनी बना दिया और वह पापों से विश्व को मुक्ति दिलाने लगी।

यहाँ बन्दरपुच्छ पर्वतशिखर के पश्चिमी ढाल पर द्रोणागिरि है। जहाँ की दिव्य औषधि को हनुमान द्वारा लंका ले जाया गया था। कहा जाता है कि लंकाविजय के पश्चात् हनुमान यहीं रहकर तपस्या करने लगे थे और अब भी हनुमानगढ़ी अयोध्या से इनकी सेवा के लिये प्रतिवर्ष एक बन्दर यहाँ पहुँचता है।

यमुनोत्री मंदिर से कुछ दूरी पर उबलते हुए पानी का स्त्रोत है। इसके कुंड में श्रद्धालुगण चावल की पोटली को कुछ देर डुबोते हैं। चावल पकने पर प्रसाद के रूप में

बाँटा जाता है। यहाँ का मुख्य मंदिर यमुनोत्री है जहाँ यमुना जी की मूर्ति रखी है। कहा जाता है कि आसितमुनि ने यहाँ कई वर्षों तक तप किया था। वे प्रति दिन यमुनोत्री और गंगोत्री दोनों स्थानों पर स्नान करके यमुनोत्री लौट आते थे। लेकिन वृद्धावस्था में जब यह सम्भव नहीं हो पाया तो गंगा जी स्वयं एक सूक्ष्म धारा के रूप में इसी स्थान पर चट्टान से निकलकर प्रकट हुई। यही कारण है कि आज भी यमुनोत्री में गंगा जी की भी पूजा की जाती है।

प्रतिवर्ष यमुनोत्री मंदिर के कपाट बैसाख महीने के शुक्ल पक्ष की अक्षय तृतीया तिथि पर अप्रैल के अंत या मई के आरम्भ में खुलते हैं तथा छः महीने पश्चात् कपाट दिवाली के दिन बन्द होते हैं।

उत्तरकाशी को पहले बाड़ाहाट कहा जाता था तथा केदारखंड में इसे सौम्यकाशी कहा गया है। ऐसा कहा जाता है कि पूर्वकाल में यहाँ यमदग्नि ऋषि का आश्रम था। ऋषि ने अपनी पत्नी की आसक्ति यहाँ आये कीर्तवीर्य अर्जुन और उसके वैभव पर देखकर, उसका वध अपने कनिष्ठपुत्र परशुराम से करवा दिया परन्तु जब प्रसन्न होकर परशुराम से वर मांगने को कहा तो उसने माता को पुनः जीवित करने की याचना की। अनन्तर कीर्तवीर्य ने कामधेनु को ऋषि से छीनना चाहा तो ऋषि का सिर काट लिया गया। इस पर परशुराम का लम्बा संघर्ष हुआ। अंततः इसी स्थल पर आकर वारणावत क्षेत्र में शिवाराधना से उन्हें शान्ति मिली तथा उनका स्वभाव सौम्य हो गया। तभी से इसे सौम्यकाशी कहा जाने लगा।

उत्तरकाशी में विश्वनाथ मंदिर और उसके सामने के आंगन में स्थापित त्रिशूल यहाँ की सर्वाधिक गरिमामय वस्तु हैं। यहाँ के अन्य मंदिर – दत्तात्रेय मंदिर, परशुराम

मंदिर तथा लक्षेश्वर आदि हैं। उत्तरकाशी का महत्व हिमालय में स्थित काशी के समान है तथा काशी की तरह यह शिव की नगरी है।

भगीरथ के तप से प्रसन्न होकर जिस स्थान पर गंगा अवतरित हुई तथा उत्तरवाहिनी बनी उसे गंगोत्री कहा जाता है। महाभारत में उल्लेख किया गया है कि यहाँ पर आकाश से गिरती हुई गंगा को महादेव जी ने अपने मस्तक पर धारण किया तथा उसे मनुष्य लोक में छोड़ दिया।

गंगोत्री का दृश्य अवर्णनीय है। यहाँ गंगा के दायें तट पर गंगा जी का भव्य मंदिर है। मंदिर के गर्भगृह में गंगा यमुना की आभूषणयुक्त मूर्तियाँ हैं। गंगा मंदिर के समीप ही भैरव मंदिर है। जिसमें शिव व भैरव की मूर्तियाँ रखी हैं।

गंगोत्री के पुजारी मुखवा ग्रामवासी हैं। जो बारी – बारी से पूजा का हक रखते हैं। गंगोत्तरी में त्रिरात्रि निवास का विशेष फल बताया गया है। यहाँ भगीरथशिला एक विशाल शिला है। कहा जाता है कि इसी स्थान पर बैठकर भगीरथ ने तप किया था। अब इस स्थान पर पिण्ड तथा दान आदि कार्य किये जाते हैं। गोमुख वह स्थान है जहाँ विशाल हिमनद के मुख से गंगा का उद्भव होता है। पूर्व में यह ग्लेशियर गंगोत्री तक रहा होगा जो अब पिघलकर २०.२५ कि.मी. ऊपर चला गया है।

गंगाजल को पवित्र माना जाता है। उसमें अनेक औषधिय गुण हैं। दो हजार वर्ष पूर्व चरक ने गंगाजल की पथ्य के रूप में लिये जाने का चरकसंहिता में विधान कर दिया था। गंगा और उसके जल की महिमा का बखान भारत के समस्त धर्मों के साहित्य में हुआ है। सुल्तान मुहम्मद तुगलक के लिये गंगाजल निरन्तर दोलताबाद जाता था। इसी प्रकार बादशाह अकबर को भी गंगाजल से बड़ा प्रेम था। 'आईनेअकबरी' में लिखा है कि बादशाह अकबर गंगाजल को अमृत समझते थे। वे

घर में और यात्रा में गंगाजल ही पीते थे। शादियों में भोजन के पश्चात् गंगाजल पिलाने की प्रथा थी। पेशवाओं के लिये गढ़मुक्तेश्वर तथा हरिद्वार से गंगाजल जाता था।

वर्तमान में नदियों में बढ़ रहे प्रदूषण की दृष्टि से गंगा जल हरिद्वार से नीचे काफी अशुद्ध हो गया है। गंगोत्री ही वह स्थान है जहाँ पर गंगा का सबसे शुद्ध जल है।)[१८]

नीतिपरक कथाएँ :

इनमें नैतिक निर्देश और उपदेशात्मक की प्रधानता रहती है। इन कथाओं में सामाजिक विधि – निषेधों के वर्णन द्वारा कथक्कड सामाजिक जीवन के लिए नैतिक संदेश देता है। ''मरीं पितर आब किलै नि लौटन'' ''सरादक बिराउ'' इसी प्रकार की कथाएँ हैं।

[१९](इसके अन्तर्गत समाज में प्रचलित नीति वाक्य तथा कहावतों से सम्बन्धित कथाएँ हैं। प्रत्यक्ष में यह कहावतें या नीति वाक्य किसी न किसी कहानी के चरम वाक्य रहे हैं। दैनिक जीवन के क्रिया – कलापों से संबंधित ये सभी कथाएँ हैं। इन कथाओं में लोक व्यवहार के निर्वाह के लिए निश्चित किए गए आचार – विचार होते हैं। इसके द्वारा पथ – प्रदर्शन किया जाता है। कहावतों में अनुभवों पर आधारित उक्तियाँ है जिनके अन्दर समाजगत परम्पराओं से चले आते अनुभव समाहित हैं। इनका सार्वभौमिक रुप होता है, इसमें समाज व काल का उपयोगी सत्य रहता है।)[१९]

परियों की कथाएँ :

लोककथा विज्ञान – श्री चन्द्र जैन

[२०](डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इन कहानियों को छः श्रेणियों में विभक्त किया है।

(१) परियों द्वारा मनुष्यों की सहायता

(२) परियों द्वारा मनुष्यों को क्षति पहुँचाना

(३) परियों द्वारा मनुष्यों का अपहरण

(४) परियों द्वारा मनुष्यों को कृत्रिम पुत्र को देना

(५) मनुष्यों द्वारा परिस्तान की यात्रा

(६) प्रेमिका या प्रेमी के रुप में परी)[२०]

सात परी एक ऐसी ही कथा है जिसमें परियाँ एक व्यक्ति की मदद करती है तथा उसे सारी सुख – सुविधाएँ देती हैं। इस प्रकार से परियों की पूजा की जाती है। दो प्रकार की परियों की कथा मिलती है एक लाल परियाँ एक सफेद परियाँ। लाल परियों को मनाना अर्थात उनकी पूजा में बकरी की बलि दी जाती है जबकि सफेद परियों की पूजा फूलों, फलों तथा अनाज चढ़ाकर की जाती है क्योंकि लाल परियों को सफेद परियों से अधिक जिद्दी माना गया है।

सामाजिक कथाएँ :

[२१](इसमें विभिन्न प्रकार की कहानियाँ आती है। स्थानीय कथाएँ, बाल कथाएँ, जाति कथाएँ तथा सामान्य कथाएँ। मनुष्य समाज की इकाई है। वह समाज में रहकर अलग – अलग कार्य कलाप करता है तथा सामाजिक, धार्मिक एवं दूसरी सभी अड़चनें उसी से सम्बन्धित कथाएँ संग्रहीत हैं। जैसे बाल विवाह, अकाल, बाढ़ आदि।)[२१]

कुमाऊँ में समाज से जुड़ी अनेक ऐसी कथाएँ हैं जिनमें सामाजिक पहलू को देखा जा सकता है। जैसे कि किसी भी अच्छे राजा को भगवान मान लेते हैं। उदाहरण

– गोलू देवता की कथा में ऐसी ही है उनके सच्चे न्याय की वजह से वह न्याय के देवता मानकर पूजे जाते हैं। गंगनाथ को शंकर भगवान मानकर पूजते हैं। जैसे कि घंटाकर्ण देवता की पूजा की जाती है जो शंकर भगवान के परम भक्त थे। मान्यता है कि वह यक्षदेव है और शंकर भगवान की भक्ति से उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ था।

''द्वि भाई'' एक ऐसी कथा है जिसमें दो भाई होते हैं तथा उसमें से एक कम अक्ल होता है जिसके कारण उनकी माँ की मृत्यु हो जाती है मगर बाद में उसकी पत्नी की समझदारी से वह अक्लमंद बन जाता है और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में ऐसे व्यक्तियों का भी स्थान होता है। प्यार तथा पारिवारिक रिश्ते अच्छे हो और मिलकर रहें तो व्यक्ति अच्छा बन जाता है।

हास्य तथा मनोरंजक कथाएँ :

सरु – नरु का भेर, लछी कोठारिक च्याल, झुसी मुसी की कथाएँ आदि हैं। इसके सिवाय बहुत से और कथाएँ हैं। इसमें समाज की सच्चाई, लोक सत्य, जातीय वैशिष्ट्य आदि समाया है।

[२२](इसमें कथा करने वालों की मनोवृत्तियाँ, संस्कृति, आचार – विचार, आस्था, धार्मिक मान्यताएँ भी अपना महत्व रखती हैं। इन्हीं बातों के कारण लोककथा में कथा – वाचकों के द्वारा रुप परिवर्तन भी होता रहता है। कभी – कभी लोककथा का सहारा लोक पंचायतों में किसी विवाद का निर्णय करने के लिए भी किया जाता है।)[२२]

इनका उद्देश्य लोगों का हास्य – व्यंग्य द्वारा मनोरंजन करना होता है तथा इस थकान भरी जिन्दगी में आराम मिलता है।

संदर्भ सूची

१. लोक संस्कृति के विविध आयाम – देव सिंह पोखरिया – पृ सं. १२

२. वही ..... पृ.सं. १६

३ कुमाऊँनी लोक क्‌थ – डॉ. प्रभा पंत – भूमिका

४ लोक साहित्य – डॉ. बापू राव देसाई – पृ.सं. १०८

५. वही ... . पृ.सं १०८

६ वही . . ... पृ सं १०८

७. वही . . पृ सं. १०८

८. वही ... . पृ स. १०९, ११०

९. वही .. . . पृ सं १०९

१० कुमाऊँ के मेले – डॉ दिनेश चद्र बलूनी – पृ.स. ६६

११. वही .... पृ स. ११८

१२. वही .... पृ सं. ११८

१३ वही .... पृ सं ११८

१४. वही .. . . पृ.स २४१

१५ वही .... पृ सं २९३

१६ वही . . . . पृ स ३४२, ३४३

१७. वही .... पृ.सं ३४४

१८. वही .... पृ.सं. २४६, २४७, २४८, २४९, २५०

१९. लोक साहित्य – डॉ बापू राव देसाई – पृ.सं. ११४

२० लोक कथा विज्ञान – श्री चंद्र जैन – पृ सं ३०

२१ लोक साहित्य – डॉ. बापू राव देसाई – पृ.स. ११४

२२. वही ... ... पृ स. ११५